स्थानीय भाषाओं का विद्यार्थियों के सांस्कृतिक विकास में योगदान–एक अध्ययन

अल्पना शर्मा*

सारांश

मानव विकास क्रम में भाषा और संस्कृति के बीच कार्य कारण सम्बन्ध होता है। संवेदना के सूक्ष्म तंतुओं को झंकृत करने वाली भाषा, जिस सांस्कृतिक परिवेश का फल है, उसका स्त्रोत मनुष्य चेतना में ही निहित होता है। किसी भी देश की उदात्तता या उसकी पवित्रमय संस्कृति, उसकी भाषा से ही अभिव्यक्त होती है इसके लिए स्वभाषा होना आवश्यक है। हर भाषा अपने प्रतीकों, बिम्बों, उपमानों, तथा अनुष्ठानों को आधार बनाकर ही समृद्ध होती है। अपनी संस्कृति को अभिव्यक्त करती है, यही भाषा भाव अपना होता है। स्थानीय भाषा संस्कृति जो कि अपने आप में अनूठी है तथा विविधताओं को समेटे है उस संस्कृति के संवर्द्धन और विकास के लिए आवश्यक है कि उसे वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में बढ़ावा दिया जाए। शोधकर्त्री द्वारा स्थानीय भाषाओं का साहित्य, संस्कृति, कला, विज्ञान व मूल्यों के सन्दर्भ में अध्ययन किया गया।

शोधकर्त्री द्वारा भाषा में निहित सांस्कृतिक तत्वों को उजागर करने हेतु विवरणात्मक, विषयवस्तु–विश्लेषण, साक्षात्कार व अवलोकन विधि अपनाई है। राजस्थान की निवासी होने के कारण शोधकर्त्री द्वारा राजस्थानी भाषा की स्थानीय भाषाओं तक अपने शोध कार्य को सीमित रखा है। विश्लेषण के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि स्थानीय भाषाएँ विद्यार्थियों के सांस्कृतिक विकास में सहायक हैं।

प्रस्तावना

संस्कृत समस्त भारतीय भाषाओं की जननी है और संस्कृत से ही पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा आधुनिक भाषाओं का जन्म हुआ। कुछ विद्वानों ने भारतीय आर्यभाषा कुल और विभिन्न भाषाओं का परिचय भी प्रस्तुत किया है। डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने राजस्थानी भाषा को भारतीय आर्य कुल की ही एक समृद्ध और सम्पन्न भाषा माना है। उनके अनुसार ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय आर्य भाषाओं को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। डॉ. सीताराम लालस के अनुसार भारतीय भाषाओं का विधिवत् इतिहास प्रामाणिक रूप से उपलब्ध नहीं है तथापि उसकी साधारण रूप रेखा ऋग्वेद से आज तक उपलब्ध है। कुछ विद्वानों ने अनार्य भाषाओं को छोड़कर परिष्कृत भाषाओं का उद्‌गम वैदिक भाषा से माना है। भाषा और बोली के कोई तात्विक अंतर नहीं है बोली ही अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर भाषा बन जाती है।

मानव विकास क्रम में भाषा और संस्कृति के बीच कार्य कारण सम्बन्ध होता है। संवेदना के सूक्ष्म तंतुओं को झंकृत करने वाली भाषा, जिस सांस्कृतिक परिवेश का फल है, उसका स्त्रोत मनुष्य चेतना में ही निहित होता है। किसी भी देश की उदात्तता या उसकी पवित्रमय संस्कृति, उसकी भाषा से ही अभिव्यक्त होती है इसके लिए स्वभाषा होना आवश्यक है। हर भाषा अपने प्रतीकों, बिम्बों, उपमानों, तथा अनुष्ठानों को आधार बनाकर ही समृद्ध होती है। अपनी संस्कृति को अभिव्यक्त करती है, यही भाषा भाव अपना होता है। परभाषा, पर प्रतीकों के कारण, भावाभिव्यंजना तथा श्रोता की समझ को कुंठित करती है। स्वभाषा के निर्माण में सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का बड़ा हाथ होता है। स्वभाषा में परिवेशगत तत्व किसी न किसी रूप में अन्तर्भूत होते हैं। मानव विकास क्रम में भाषा और संस्कृति के बीच कार्य–कारण संबंध होता है।

अध्ययन की आवश्यकता

आज वैश्विक परिदृश्य बहुत तीव्र गति से बदलने की दिशा में गतिमान है ऐसे में जब वैश्विक परिस्थितियाँ मानव को एक नई राह टटोलने को बैचेन किये हैं उनकी समस्याओं को भारत किस तरह समाधान दे पाता है इस पर बहुत कुछ निर्भर है। हमारे ऋषियों, विद्वानों ने, देशभक्तों ने समय–समय पर भारतीयता को अलग–अलग रूपों, संदर्भो, अर्थो में परिभाषित किया है समझाया है। लेकिन समझने की बात है कि हमारी भाषाएँ, हमारी बोलयाँ, हमारी परम्पराएँ, हमारे मूल्य ओर

*सहायक प्रोफेसर, बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, गाँधी विद्या मन्दिर, सरदारशहर, चूरू (राजस्थान)

हमारे आदर्श ये सब मिलकर हमें एक परिभाषा देते हैं। यही परिभाशा उस भारतीयता को आकार देती है जो विविधता व एकता का अति सुंदर उदाहरण है। हमारी संस्कृति के उदात्त तत्वों ने इस देश को प्रभावित किया और इसके सर्वसमावेशी गुणों ने अपनी व्याप्ति से एशिया के बड़े भू–भाग को भारत की ओर आकृष्ट किया। स्थानीय भाषाओं का संस्कृति के प्रचार–प्रसार में विशेष योगदान रहा है। यहाँ एक ओर जहाँ सनातन धर्म का प्रचलन रहा, पौराणिक देवी–देवताओं की पूजा होती रही वहीं दूसरी और लोक देवी देवताओं का भी महत्व बढ़ने लगा और उनकी वंदना भी लोग पौराणिक देवों से भी अधिक रूप में बढ़कर करने लगे। स्थानीय भाषा संस्कृति जो कि अपने आप में अनूठी है तथा विविधताओं को समेटे है उस संस्कृति के संवर्द्धन और विकास के लिए आवश्यक है कि उसे वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में बढ़ावा दिया जाए। शोधकर्त्री द्वारा स्थानीय भाषाओं का साहित्य, संस्कृति, कला, विज्ञान व मूल्यों के सन्दर्भ में अध्ययन किया गया, जो अपने अंदर एक अलग विश्व को समेटे है

अध्ययन का महत्व

भाषा राष्ट्र की सशक्त पहचान होती है क्यों कि इसमें सम्बन्धों को बाँधने की सबल शक्ति विद्यमान होती है। यह राष्ट्र की राजनीतिक, कानूनी, शैक्षिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभ्यता को भी सहेज कर रखने में सक्षम है जब तक भाषा अपनी परम्पराओं से जुड़ी रहती है तब तक राष्ट्र सुरक्षित रहता है। भाषा राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का एक प्रमुख घटक भी है क्यों कि भाषा ही राष्ट्रीय संस्कृति की परिचायक है। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार भाषाओं का उद्‌गम स्त्रोत कठिनता से सरलता की और रहा है। सभी भाषाओं के दो स्वरूप परिलक्षित होते है। एक लौकिक स्वरूप, दूसरा अभिजात्य स्वरूप। विद्यार्थियों के सभ्य और सुसंस्कृत होने के लिए भाषा को जानना और उसकी जानकारी होना जरूरी है। यही नहीं विद्यार्थियों के सामाजिक और मानसिक जीवन में भी भाषा की महत्ता स्वयं–सिद्ध है। स्थानीय भाषाएँ बालक के जन्म के पश्चात प्रथम भाशा होती हैं जिसके सम्पर्क में वह आता है इसीलिए विद्यार्थी से वह घनिष्ठ रूप से जुड़ी होती है और उसके सांस्कृतिक विकास में सहायक होती हैं।

अध्ययन का औचित्य

अद्यावधि स्थानीय भाषा और संस्कृति का एकांगी अध्ययन होता रहा है। संस्कृति को साथ जोड़कर लेखन की परम्परा विकसित नहीं हो पाई। प्रस्तुत अध्ययन में भारतीय संस्कृति का अनुशीलन करने का प्रयास किया जाना आवश्यक है। सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का मुख्य आधार बिंदु स्थानीय संस्कृति है। शोधकर्त्री को स्थानीय भाषाओं का सांस्कृतिक विकास में योगदान विषय पर कोई अध्ययन नहीं पाया अतः शोधकर्त्री ने प्रस्तुत विषय "स्थानीय भाषाओं का विद्यार्थियों के सांस्कृतिक विकास में योगदान –एक अध्ययन" को अध्ययन हेतु चुना है।

समस्या कथन

"स्थानीय भाषाओं का विद्यार्थियों के सांस्कृतिक विकास में योगदान–एक अध्ययन"

अध्ययन का उद्देश्य

स्थानीय भाषाओं का विद्यार्थियों के सांस्कृतिक विकास में योगदान का अध्ययन करना।

प्रयुक्त शब्दावली की व्याख्या

स्थानीय भाषाएँः–

अर्थात लोक व्यवहार में प्रचलित "वाग्" शब्द ही भाषा शब्द के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। भाषा के विभिन्न रूप प्रमुखतः दो आधारों पर आधारित है इतिहास व भूगोल। संस्कृत, पालि, प्राकृत अपभ्रंश ये भेद ऐतिहासिक हैं। भौगोलिक दृष्टि से अधिक व्यापक रूप भाषा है फिर बोली व स्थानीय बोली व इसका संकीर्णतम रूप बोली है। स्थानीय अर्थात (स्थान + छ) स्थान विशेष से सम्बद्ध होता है। भाषा का यह रूप स्थानीय भाषा बहुत सी व्यक्ति भाषाओं का सामूहिक रूप है जिनमें आपस में कोई स्पष्ट अंतर न हो।

सांस्कृतिक विकास :–

संस्कृति शब्द मूलतः 'कृ' धातु से सम्बद्ध है जिसका अर्थ है करना। 'कृ' से पूर्व सम् उपसर्ग धत्र (ति) प्रत्यय लगाने से संस्कार शब्द बनता है जिसका अर्थ है 'पूरा करना', 'सुधारना', 'सज्जित करना', 'माँजकर चमकाना', 'श्रृंगार', 'सजावट' आदि हैं। व्याकरण के नियमों के अनुसार सिद्ध (शब्द रूप) आदि सुनिर्मित, अलंकृत हैं। इसी की संज्ञा संस्कृति है, संस्कार है। इस प्रकार व्यक्ति में इन सभी सांस्कृतिक तत्वों का विकास करना ही सांस्कृतिक विकास है।

विद्यार्थी :–

विद्यार्थी का शाब्दिक अर्थ है – विद्या–अर्थी अर्थात् जो विद्या को वहन करे। औपचारिक रूप से शिक्षा ग्रहण करने वाला ही विद्यार्थी है।

अध्ययन विधि व प्रक्रिया :–

प्रस्तुत अध्ययन में भाषा में निहित सांस्कृतिक तत्वों का अध्ययन कर उन्हे उजागर करना है अतः यहाँ विषय–वस्तु विश्लेषण, विवरणात्मक, अवलोकन एवं साक्षात्कार विधि अपनाई गई है।

परिसीमनः– चूंकि शोधकर्त्री राजस्थान की निवासी है अतः राजस्थानी भाषा के विविध सांस्कृतिक तत्वों के अन्तर्गत सांस्कृतिक, आध्यात्मिक व साहित्यिक तत्वों का अध्ययन किया गया। राजस्थानी भाषा की विभिन्न बोलियाँ – मेवाड़ी, मालवी, मेवाती, बागड़ी, शेखावाटी आदि का अध्ययन में सम्मिलित किया गया है।

सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन

अध्ययन के दौरान शोधकर्त्री द्वारा पूर्व में किये गये शोध अध्ययनों का पुनरावलोकन किया जिसमें 30 भाषाओं व 6 विदेशी शोध कार्यों का अध्ययन किया। मीना, एम.एल. व धीरज ने (2010) में "Traditional folk media in marwar rigion of Rajasthan" विषय पर, त्रिवेदी, प्रवीण (2015) ने मालवांचल के पुरातात्विक स्थलों में लोक संस्कृति का अंकन विषय पर, पूनियां, बलवीर सिंह (2015) ने 'राजस्थानी भाषा पन्द्रह सौ वर्ष पुरानी' विषय पर, मोदी, मीनाक्षी (2015–16) ने 'लोक संस्कृति में शैक्षिक निहितार्थ विषय पर, पाण्डे, राजीव (2004) ने रूहेलखण्ड का सांस्कृतिक अध्ययन नामक विषय पर शोध कार्य किया निष्कर्षतः शोधकर्त्री ने पाया कि स्थानीय भाषा को विद्यार्थी के सांस्कृतिक विकास से जोड़कर अध्ययन कम हुआ है अतः प्रस्तुत विषय 'स्थानीय भाषाओं का विद्यार्थियों के सांस्कृतिक विकास में योगदान' विषय पर अध्ययन करने का निश्चय किया।

स्थानीय भाषाओं का सांस्कृतिक विकास में योगदान (लोक संस्कृति, रीति रिवाज, परम्परा, मेले, उत्सव, व्रत, त्योहार एवं लोककला)

मानव का नहीं प्रकृति का भी करती कल्याण है। ये महान भारत की संस्कृति की सच्ची पहचान है।

लोक संस्कृति :–

लोक संस्कृति शब्द दो शब्दो से मिलकर बना है लोक एवं संस्कृति। भारतीय दृष्टि से लोक और वेद में भेद है। जो तत्व लोक में होते हैं भारतीय ऋषि–मुनि, विद्वान इसे बहुत सम्मान देते हैं।

रीति रिवाज परम्परा मेले, उत्सव, त्योहार व व्रतः–

प्रत्येक देश की संस्कृति का निर्माण, स्थानीय स्तर की संस्कृति से ही होता है जिस प्रकार समस्त छोटी बड़ी नदियाँ मिलकर विशाल समुद्र का निर्माण करती हैं उसी प्रकार विभिन्न स्थानीय संस्कृतियों के योग से ही महान संस्कृति का निर्माण होता है। विधार्थी शैशवावस्था से ही मातृभाषा अथवा स्थानीय भाषा से जुड़ा होता है। इसी भाषा में ही उस परिवार के समस्त सांस्कृतिक तत्व निहित होते हैं। परिवार की समस्त परम्पराएँ रीति–रिवाज उत्सव, व्रत त्योहार, आदि जब मनाये जाते हैं तो उस समय स्थानीय भाषा का ही प्रयोग किया जाता है। किसी प्रदेश के लोगों का मानसिक व कलात्मक विकास ही संस्कृति है। इतिहास के दौर में किसी जाति या समूह के जीवन यापन के तरीको में जो विशिष्टता होती है वही संस्कृति है। प्रत्येक संस्कृति एवं वहाँ के मनुष्यों की बुद्धि का विकास समान दृष्टिगोचर होता है। संस्कृति के आदर्श, मूल्य, परम्पराएँ वर्तमान व भविष्य की पीढ़ियों को प्रेरणा देते हैं। ये सभी संस्कृति के जीवन तत्व कहलाते हैं। सामाजिक व्यवहार व रीति–रिवाजों का निर्माण इन आदर्शों से ही होता है। राजस्थान की संस्कृति में भी ये आदर्श, मूल्य, परम्पराएँ है। भाषा, साहित्य, संगीत, नृत्य, चित्रकला, वास्तुकला, त्योहार, पर्व, भक्तिभाव, मंदिर तीर्थ, पूजा, उपासना, परिवार, संबंध, सामाजिक रीति–रिवाज, अनुष्ठान ये समस्त संस्कृति आनन्दमयी है। हिन्दू संस्कृति में बालक के जन्म से लेकर उसके अंत समय तक सोलह धार्मिक संस्कारों का विधान किया गया है। स्त्रियाँ लोकगीत गाती हैं। सामूहिक प्रीतिभोज का आयोजन किया जाता है। रंग बिरंगे परिधान व विविध प्रकार के आभूषण पहने जाते है। ये सभी व्रत – त्योहार, उत्सव, मेले लोक संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। इनमें राजस्थानी संस्कृति का सबल पक्ष प्रदर्शित होता है।

उत्सव, त्यौहार व व्रत

इन त्योहारों में जनता का स्पंदन व हर्षोल्लास है। जिस प्रकार दीपावली, होली, दशहरा, जन्माष्टमी, रामनवमी, गणेश चतुर्थी, महाशिवरात्रि, महावीर जंयती, संक्राति, बसन्त पंचमी आदि राष्ट्रीय स्तर के त्यौहार यहाँ मनाये जाते हैं उसी प्रकार अक्षय तृतीया, शीतलाष्टमी, गणगौर,

नागपंचमी, तुलसी पूजन, धींगा गवर, छोटी तीज, बड़ी तीज करवा चौथ आदि त्यौहार स्थानीय संस्कृति के परिचायक हैं। प्रस्तुत गीत में गौरी–पूजन के अवसर पर स्त्री – सुलभ आभूषण–प्रियता का निरूपण किया गया है –

''माथे ने मैंमद लाव, भँवर म्हारै हिवड़ै हांस घड़ाय
ओ जी म्हारी रखड़ी रतन जड़ाव भँवर म्हानै खेलण
दौ गिणगौर।''

व्रतों के गीतों में पीपल आदि वृक्षों को महत्व दिया गया है –

''नदी रै किनारै रूखड़ौ औ राम
जद कद होवै रे विणास।।''

तीज के अवसर पर भाई–बहिन के निष्छल प्रेम की अभिव्यक्ति–

''अे ऊभौ तौ रैया बीरा बाग में
करलां मनडा री मीठी बात मेवड़लां अे झड़
मांडियौ।

रीतिरिवाज व परम्परा :–

इन रीति–रिवाजों से ही समाज संचालित होता है। सामाजिक मूल्यों में संतुलन बनाया जाता है ये रीति–रिवाज किसी वैधानिक बन्धन के रूप में नहीं अपितु इन्हें सामाजिक व नैतिक बंधन या नैतिक नियम कहा जा सकता है। यहाँ का व्यक्ति इन नियमों का स्वतः ही, सहज भाव से पालन करता है।

राजस्थान की विभिन्नताओं व पृथकताओं के कारण यहां के रीति–रिवाज जटिल व गूढ़ लगते हैं लेकिन मूल रूप से ये सभी भारतीय सनातन परम्परा से सम्बन्धित हैं।

लोकगीत में रीति–रिवाज

पुत्र जन्म पर दानशीलता की परम्परा दर्शनीय है –

''रण चढ़ण, कंकण बंधण, पुत्र बंधाई चाव
अै तीनूं दिन त्याग रा कहा रंक कहा राव।''

जनेऊ धारण करते समय देवताओं का नाम लिया जाता है–

''गळे जनेऊ लाडा पाटकै री डोरी
भिक्सा पुरसै बहु सूरज री गोरी.....''

कन्यादान को प्रस्तुत गीत में दान – धर्म से जोड़ा गया है –

''धरहर धरहर धरती धूजी
हुई है धरम री बेला ओ राज
हस्तियाँ रा दांन बाई रा वाभोसा देसी।''

इसी प्रकार मृत्यु पर 'डूरकी' नामक गीत रूदन के साथ गाये जाते हैं –

बेटा जी देवै थारै परिक्रमा,
कोई पोता जी करे डंडौत
औ जी बड़ भागी थारै परिक्रमा
हर रौ हिंगलौ सदा संग रै हालै।''

मेले :–

राजस्थान के कई मेले वीरों, व सतियों की स्मृति में तथा कुछ लौकिक देवी–देवताओं से जुड़े हैं। मेले के अवसर पर इनकी वीरता, दानशीलता, त्याग आदि गुणों का गायन किया जाता है। ये व्रत–उत्सव सामूहिक रूप में मनाये जाते हैं।

सीकर में आयोजित होने वाला जीणमाता का मेला, भर्तृहरि, डिग्गी, श्री महावीरजी में जेन धर्म के 24 वे तीर्थंकर महावीर स्वामी का मेला, शिवाड़ मेला, शीतला माता मेला, केसरियानाथ जी का मेला, नाकोड़ा, रणथम्भौर में गणेश जी का मेला, कैला देवी मेला, बेणेश्वर महादेव, नाथद्वारा मंदिर का अन्नकूट महोत्सव आदि ऐसे अनेक मेले हैं जिनमें लौकिक व पौराणिक परम्परा का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। मोती डूंगरी (जयपुर) सालासर, (चूरू) मेड़ता शहर, सती मेला झुंझुनू, चार भुजा, माता कुण्डलिनी, कोलायत व जोधपुर में शीतला व कागे का मेला आदि।

पशु मेलों में नागौर, पुश्कर, परबतसर, पचपद्रा, जैसलमेर, गोगामेड़ी, बालोतरा, बिलाड़ा, पिंडवाड़ा, तिलवाड़ा, सांचौर विशेष प्रसिद्ध मेले हैं। प्रतिवर्ष लगने वाले इन मेलों में पशुधन क्रय–विक्रय के साथ–साथ लोकोत्सवों का भव्य आयोजन होता है, सांस्कृतिक आदान–प्रदान होता है।

भारतीय दर्शन में कला को प्राचीन काल से ही महत्त्व मिलता रहा है। यहाँ प्राचीन काल से ही विभिन्न कलाएँ प्रचलित रही हैं। कला का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। भरत कृत नाट्य–शास्त्र में 'कला' का उल्लेख 'शिल्प, के रूप में हुआ है। पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' तथा 'बौद्ध ग्रन्थों' में भी इसके लिए 'शिल्प' शब्द का प्रयोग हुआ है। यहाँ 'शिल्प' कला–कौशल का बोध करता है।

कला मानव जीवन को संचालित करने वाली वह मानसिक शक्ति है जो मनुष्य को और अधिक आध्यात्मिक शांति प्रदान करती है। आभिजात्य व लौकिक शैली दोनों का विकास राजस्थानी शैली में होने

से कुछ जातियाँ इस कला के साथ जुड़ गयी।

मांडणे :– सांझी, पथवारी, व्रत त्यौहारों, मांगलिक अवसरो पर आँगन व दीवारों पर मांडे जाते हैं। मांडणे मांडते समय स्त्रियाँ पंक्तियाँ बोलती है जो उसके महत्व को दर्शाती हैंः–

''म्हार पीढी जी कोबर रिल – मिलो।''

'पथवारी पूजन के समय उससे भूले को रास्ता दिखाने की कामना की जाती है–

''पथवारी तू पथ को ये राणो भूल्या न बाट बताव।''

पड़ :–

'पड़' जो कि लोक देवताओं व वीरों का प्रशस्ति गान भी है कपड़े पर चित्रित, चित्रकला का स्वरूप ही है। देवनारायणजी की पड़ में उन्हे ईश्वरीय अंश बताने हेतु निम्न वर्णन मिलता है –

''माला सेरी री डूंगरी में कांकर फाड़ कंवल पांगरियौ। जिणमें देवनारायण भगवान रो जलम हुयो अर भोज री लुगाई साडू उवां ने झोले में लियो।''

मेहंदी :– इसी प्रकार मेहंदी के पेड़ का भी देव उठनी एकादशी के गीतों में वर्णन मिलता है–

''म्हार आंगणा जी पन्ना मारू मैहन्दी को रूख,
सेला मारू मेहन्दी को रूख"

कावड़ :–

कावड़ मंदिरनुमा काष्ठकृति है जिस पर पौराणिक कथाओं को चित्रित किया जाता है।

लोकगीत :–

लोक संगीत में इन विशिष्ट मूल्यों के दर्शन होते हैं। उनमें सहज सुलभ सौन्दर्य, मनोरजंन एवं रसादि की अनुभूति विशेष रूप से विद्यमान होती है। लोक संगीत का जन्म व्यक्ति के नैतिक मूल्यों, सामाजिक उत्सव, **त्यौहारों रीति**– रिवाजों एवं सामूहिक कार्यों द्वारा ही हुआ है। लोकगीत सर्वाधिक प्राचीन हैं व आदि काव्य हैं

(1) धार्मिक गीत–देवी देवताओं के गीत –

''चालो चालो आपै चौसठ देविया
जोधाणो जोवाजी जाय।

(2) व्रत गीत – जिनमें ग्यारस के गीत सूरज के गीत, ऊबछट के गीत, तुलसी विवाह के गीत, जन्माष्टमी के, गणगौर, शीतला माता के, होली दीवाली के गीत आदि प्रमुख है।

(3) पर्वोत्सव के गीत –

(4) संस्कार गीत –

सामाजिक शिक्षा जो कि दूल्हे को दी जाती है –

''नैनकड़ी म्हारै कालजिये री कोर, बडोड़ी सीर रो सैवरौ
नैनकडी म्हारै सेजां रो सिणगार, बडोड़ी सौवे मेंल में।"

(5) पारिवारिक लोक गीत –

(6) विविध गीत –

(1) व्यवसायी जातियों के गीत – भीलों द्वारा गाये जाने वाले गीतों में सामाजिक विडम्बनाओं आर्थिक संत्रास, सांमती दुर्व्यवहार, युद्ध की विभीषिकाओं के दृश्य दिखाई देते हैं–

''खिरणी भरूं तौ म्हारी जरणी परी लाजै रे नाथूसिंह देवड़ा पांचां नै पचीस थें तौ मार्या रे।

(3) ऐतिहासिक गीत –'हांसू देसां ने परदेसां ये, हांसू जरमर लड़ाई थाए ये' में जर्मन द्वारा की गई लड़ाई को समाज हेतु हानिकारक बताया है।

(3) श्रमिक गीत –'हक हांको महादेव, हक हांकौ ईसर दुनिया नै धन्धैं लगाये दीजौ जी।'

लोकनृत्य

भारतीय संगीत में नृत्य की परम्परा भी गायन व वादन के साथ जुड़ी हुई है। राजस्थानी नृत्य परम्परा भी अपनी विशिष्टताओं के साथ ही भारतीय नृत्य परम्परा की सभी विशेषताएँ रखती है जिसमें शास्त्रीय व लौकिक नृत्य दोनों प्रकार की परम्पराएँ विद्यमान है। गैर, घेर, गेहर शेखावाटी का गींदड़ नृत्य, चंग नृत्य, मारवाड़ का डांडिया व डंडिया नृत्य जालौर का ढ़ोल नृत्य आदि इसी क्रम में हैं। जसनाथी सिद्धों का अग्नि नृत्य, अलवर, भरतपुर का बम नृत्य भी क्षेत्रीय नृत्य है। जातीय लोक नृत्य में वनवासियों के लोक नृत्य, सांसियों के नृत्य, कालबेलियों के, गूजरों के चरी नृत्य आदि शामिल है। व्यावसायिक नृत्यों में भवई, तेरहताली नृत्यों को माना जा सकता है।

लोक नाट्य

बीकानेर व जैसलमेर में रम्मत का सामुदायिक स्वरूप अब भी वर्तमान है। लीलाएँ लोक संस्कृति के धार्मिक व सामाजिक पक्ष को उजागर करती हैं ये भरतपुर, जयपुर क्षेत्रों में अधिक लोकप्रिय हैं। रामायण व भागवत् आधारित कथाओं को लोक जीवन से जोड़कर प्रस्तुत किया जाता है राधा–कृष्ण, सीता–राम साधारण व्यक्ति के रूप में आते हैं।

निष्कर्ष

अध्ययन में शोधकर्त्री ने पाया कि विभिन्न स्थानीय

भाषाओं का प्रभाव विद्यार्थी पर अवश्य पड़ता है। यह देखना है कि जिस परिवार व समाज में स्थानीय भाषाएँ इतने गहरे तक समाई हों तो उस परिवेश में रहने वाला विद्यार्थी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पायेगा। जबकि बालक के परिवार व समाज में प्रत्येक अवसर पर स्थानीय भाषा का प्रयोग होता है अतः संस्कृति के ये इन तत्वों का विकास विद्यार्थी में सरलतापूर्वक कैसे हो पाता है। सांस्कृतिक तत्व जैसे आनंदोत्सव, सहकार, संस्कृति, सहयोग, सद्भावना आदि तत्वों का विकास बालक में निरंतर निरन्तर होता रहता है।

लोक संस्कृति, रीति–रिवाज, परम्परा, व्रत, त्यौहार, उत्सव, मेले, लोक कला, चित्रकला, गीत, नृत्य, नाट्य आदि सभी संस्कृति के वाहक हैं और उनका वाहन स्थानीय या लोक भाषा है। इन सभी तत्वों का विद्यार्थियों में सौन्दर्य बोध, सामाजिकता, समन्यव, नैतिकता सामरस्य, कर्मठता आदि प्रवृत्तियों का विकास होता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

शेखावत, कल्याण सिंह. (1994). राजस्थानी भाषा साहित्य संस्कृति. जोधपुरः राजस्थानी ग्रन्थागार.

श्री वार्हस्पत्य, किशोर सिंह. (अक्टूबर 1920). झालरा पाटनः सौरभ

डॉ.शर्मा, गोपीनाथ. राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास. जयपुर. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

कपिल,एच.के.(2007).अनुसन्धान विधियाँ.आगराःएच.पी. भार्गव बुक हाउस

डॉ.शर्मा, आर.ए.(2008).शिक्षा अनुसन्धान. मेरठः आर लाल बुक डिपो.

डॉ. हर्ष, हरिदास.(मार्च 2017).विकल्प.बीकानेरःअजित फाउण्डेशन

http://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/3219

http:// hd/handle.net/10603/44962

Emerging rends in education. (August 2011).vol.2,no.01

Samachar jagat, Wednesday, 23 november 2016

अखण्ड ज्योति.(2015)..मथुरा;अखण्ड ज्योति संस्थान.

भटनागर, शचीन्द्र.(दिसम्बर 2014).युग निर्माण योजना. मथुराःयुग निर्माण योजना ट्रस्ट.